

## Chapter पाँच

### महाराज परीक्षित को शुकदेव गोस्वामी का अन्तिम उपदेश

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह शुकदेव गोस्वामी के परब्रह्म विषयक संक्षिप्त उपदेशों से महाराज परीक्षित का तक्षक-दंश भय जाता रहा।

पिछले अध्याय में इस भौतिक जगत में कार्यरत चार प्रकार के प्रलय का वर्णन कर चुकने के बाद, अब श्रील शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित को याद दिलाते हैं कि उन्होंने किस तरह तृतीय स्कंध में ब्रह्माण्ड के विभिन्न युगों की काल गणना की व्याख्या की थी। ब्रह्मा के एक दिन में चार युगों वाले एक हजार चक्र होते हैं जिसमें चौदह विभिन्न मनु शासन (मन्वन्तर) करते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इस तरह मृत्यु हर देहधारी के लिए अपरिहार्य है किन्तु आत्मा नहीं मरता क्योंकि यह भौतिक शरीर से सर्वथा भिन्न होता है। तत्पश्चात् श्रील शुकदेव गोस्वामी बतलाते हैं कि उन्होंने *श्रीमद्भागवत* में परमात्मा श्री हरि के यश का बारम्बार कीर्तन किया है उनके प्रसन्न होने पर ब्रह्मा जन्म लेते हैं और जिनके क्रोध से रुद्र का जन्म होता है। “मैं मरूँगा” यह भाव तो पाशविक प्रवृत्ति है क्योंकि आत्मा में जन्म-मरण आदि कोई परिवर्तन नहीं होता। जब शरीर का सूक्ष्म मानसिक आवरण दिव्य ज्ञान से विनष्ट हो जाता है, तो शरीर के भीतर आत्मा पुनः अपना आदि स्वरूप प्रदर्शित करता है। जिस तरह क्षणभंगुर दीपक का अस्तित्व तेल, पात्र, बत्ती तथा अग्नि के मेल से होता है उसी तरह भौतिक शरीर तीन गुणों, के संमेल से बनता है। भौतिक शरीर जन्म के समय प्रकट होता है और कुछ काल तक जीवित रहता है। अन्त में जब भौतिक गुणों का मेल विलीन हो जाता है और शरीर की मृत्यु होती है, तो दीपक के बुझने जैसी घटना घटती है। शुकदेव गोस्वामी राजा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, “तुम अपने को भगवान् वासुदेव के ध्यान में स्थिर करो तो तक्षक के दंश का तुम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।”

श्रीशुक उवाच

अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः ।

यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अत्र—श्रीमद्भागवत में; अनुवर्णयते—विस्तार से वर्णन हुआ है; अभीक्षणम्—बारम्बार; विश्व-आत्मा—समस्त ब्रह्माण्ड की आत्मा; भगवान्—भगवान्; हरिः—हरि; यस्य—जिसके; प्रसाद—प्रसन्न होने से; जः—उत्पन्न; ब्रह्मा—ब्रह्मा; रुद्रः—शिव; क्रोध—क्रोध से; समुद्भवः—उत्पन्न।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस श्रीमद्भागवत की विविध कथाओं में भगवान् हरि का विस्तार से वर्णन हुआ है जिनके प्रसन्न होने पर ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं और जिनके क्रोध से रुद्र का जन्म होता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका करते हुए श्रीमद्भागवत का विस्तृत सारांश प्रस्तुत किया है। इन महान् आचार्य के कथन का सार यह है कि शुकदेव गोस्वामी ने भगवान् कृष्ण के प्रति जिस स्वेच्छ प्रेमपूर्ण समर्पण का वर्णन किया है, वह जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है। श्रीमद्भागवत का एकमात्र उद्देश्य बद्धजीव को भगवान् के प्रति ऐसे ही समर्पण के लिए और भगवद्धाम जाने के लिए आश्वस्त करना है।

त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ।

न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥ २ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; तु—लेकिन; राजन्—हे राजा; मरिष्ये—मैं मरने वाला हूँ; इति—यह सोच कर; पशु-बुद्धिम्—पाशविक मनोवृत्ति का; इमाम्—इस; जहि—त्याग दो; न—नहीं; जातः—उत्पन्न; प्राक्—इससे पूर्व; अभूतः—अविद्यमान; अद्य—आज; देह-वत्—शरीर की तरह; त्वम्—तुम; न नङ्क्ष्यसि—नष्ट नहीं होगे।

हे राजा, तुम यह सोचने की पाशविक प्रवृत्ति कि, “मैं मरने जा रहा हूँ” त्याग दो। तुम शरीर से सर्वथा भिन्न हो क्योंकि तुमने जन्म नहीं लिया है। भूतकाल में ऐसा समय नहीं था जब तुम नहीं थे और तुम विनष्ट होने वाले भी नहीं हो।

तात्पर्य : प्रथम स्कन्ध के अन्त (१.१९.१५) में राजा परीक्षित ने कहा था—

तं मोपजातं प्रतियन्तु विप्रा गंगा च देवी धृत-चित्तमीशे ।

द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥

“हे ब्राह्मणो! तुम मुझे पूर्ण शरणागत आत्मा के रूप में स्वीकार करो और भगवान् की प्रतिनिधि स्वरूपा माता गंगा मुझे उसी रूप में स्वीकार करें क्योंकि मैंने पहले ही भगवान् के चरणकमलों को अपने हृदय में रख लिया है। तक्षक या ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न कोई भी जादू-भरी वस्तु आकर तुरन्त मुझे काट ले। मेरी यही इच्छा है कि आप लोग भगवान् विष्णु के कार्यकलापों का गायन करते रहें।”

श्रीमद्भागवत सुनने के पूर्व भी राजा परीक्षित महाभागवत थे। राजा के मन में मृत्यु का कोई पाशविक भय नहीं था किन्तु शुकदेव गोस्वामी हमारे लिए अपने शिष्य से उसी तरह प्रखर बातें कर रहे हैं जिस तरह भगवान् कृष्ण भगवद्गीता में अर्जुन से कड़े शब्दों में बोलते हैं।

न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान् ।

बीजाङ्कुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथानलः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

न भविष्यसि—तुम नहीं होगे; भूत्वा—होकर; त्वम्—तुम; पुत्र—पुत्रों; पौत्र—नातियों; आदि—इत्यादि; रूप-वान्—स्वरूप वाले; बीज—बीज; अङ्कुर—तथा अंकुर; वत्—सदृश; देह-आदेः—भौतिक शरीर तथा इसके साज-सामान से; व्यतिरिक्तः—पृथक्; यथा—जिस तरह; अनलः—अग्नि ( काष्ठ से )।

तुम अपने पुत्रों तथा पौत्रों के रूप में फिर से जन्म नहीं लोगे जिस तरह बीज से अंकुर जन्म लेता है और पुनः नया बीज बनाता है। प्रत्युत तुम भौतिक शरीर तथा उसके साज-सामान से सर्वथा भिन्न हो, जिस तरह अग्नि अपने ईंधन से भिन्न होती है।

तात्पर्य : कभी कभी लोग यह स्वप्न देखते हैं कि वे अपने पुत्र के पुत्र रूप में पुनः जन्मे हैं जिससे वे उसी भौतिक परिवार में निरन्तर रहते रहें। जैसाकि श्रुति-मंत्र में कहा गया है—*पिता पुत्रेण पितृमान् योनियोनौ*—पिता अपने पुत्र में पिता को देखता है क्योंकि वह अपने पौत्र के रूप में जन्म ले सकता है। *श्रीमद्भागवत* का उद्देश्य आध्यात्मिक मोक्ष है, शारीरिक पहचान के मोह की मूर्खता को दीर्घकाल तक बनाये रखना नहीं है। इसे इस श्लोक में स्पष्ट रूप से कहा गया है।

स्वप्ने यथा शिरश्छेदं पञ्चत्वाद्यात्मनः स्वयम् ।

यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

स्वप्ने—स्वप्न में; यथा—जिस तरह; शिरः—किसी का सिर का; छेदम्—काटा जाना; पञ्चत्व-आदि—पाँच तत्त्वों से बने होने की स्थिति तथा अन्य स्थितियाँ; आत्मनः—अपनी ही; स्वयम्—स्वयं; यस्मात्—क्योंकि; पश्यति—देखता है; देहस्य—शरीर का; ततः—इसलिए; आत्मा—आत्मा; हि—निश्चय ही; अजः—अजन्मा; अमरः—अमर।

स्वप्न में मनुष्य अपने ही सिर को काटा जाते देख सकता है और वह यह समझ सकता है कि उसका आत्मा स्वप्न के अनुभव से अलग खड़ा है। इसी तरह जगते समय मनुष्य यह देख सकता है कि उसका शरीर पाँच भौतिक तत्त्वों का फल है। इसलिए यह माना जाता है कि वास्तविक आत्मा उस शरीर से पृथक् है, जिसे वह देखता है और वह अजन्मा तथा अमर है।

घटे भिन्ने घटाकाश आकाशः स्याद्यथा पुरा ।

एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

घटे—घड़े में; भिन्ने—टूट जाने पर; घाट-आकाशः—घड़े के भीतर का आकाश; आकाशः—आकाश; स्यात्—बना रहता है; यथा—जिस तरह; पुरा—पूर्ववत्; एवम्—उसी तरह से; देहे—शरीर में; मृते—मर जाने पर, मुक्तअवस्था में; जीवः—जीवात्मा; ब्रह्म—अपनी आध्यात्मिक स्थिति; सम्पद्यते—प्राप्त कर लेता है; पुनः—फिर से।

जब घड़ा टूट जाता है, तो घड़े के भीतर का आकाश पहले की ही तरह आकाश बना रहता है। उसी तरह जब स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर मरते हैं, तो उनके भीतर का जीव अपना आध्यात्मिक स्वरूप धारण कर लेता है।

मनः सृजति वै देहान्गुणान्कर्माणि चात्मनः ।

तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

मनः—मन; सृजति—उत्पन्न करता है; वै—निस्सन्देह; देहान्—भौतिक शरीरों को; गुणान्—गुणों को; कर्माणि—कर्मों को; च—तथा; आत्मनः—आत्मा का; तत्—वह; मनः—मन; सृजते—उत्पन्न करता है; माया—परमेश्वर की मायाशक्ति; ततः—इस प्रकार; जीवस्य—जीव का; संसृतिः—अस्तित्व ।

आत्मा के भौतिक शरीर, गुण तथा कर्म भौतिक मन द्वारा ही उत्पन्न किये जाते हैं। मन स्वयं भगवान् की मायाशक्ति से उत्पन्न होता है और इस तरह आत्मा भौतिक अस्तित्व धारण करता है।

स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते ।

तावद्दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ।

रजःसत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

स्नेह—तेल का; अधिष्ठान—पात्र; वर्ति—बत्ती; अग्नि—तथा अग्नि; संयोगः—संमेल; यावत्—जितना; ईयते—देखा जाता है; तावत्—उस हद तक; दीपस्य—दीपक का; दीपत्वम्—दीपक के रूप में कार्य करने की स्थिति; एवम्—उसी तरह; देह-कृतः—भौतिक शरीर के कारण; भवः—संसार; रजः-सत्त्व-तमः—रजो, सतो तथा तमोगुणों की; वृत्त्या—क्रिया से; जायते—उत्पन्न होता है; अथ—तथा; विनश्यति—नष्ट होता है ।

दीपक अपने ईंधन, पात्र, बत्ती तथा अग्नि के संमेल से ही कार्य करता है। इसी तरह भौतिक जीवन, शरीर के साथ आत्मा की पहचान पर आधारित होने से, उत्पन्न होता है और रजो, तमो तथा सतोगुणों के कार्यों से विनष्ट होता है, जो शरीर के अवयवी तत्त्व हैं।

न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः ।

आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; तत्र—वहाँ; आत्मा—आत्मा; स्वयम्-ज्योतिः—आत्म-प्रकाशित; यः—जो; व्यक्त-अव्यक्तयोः—व्यक्त तथा अव्यक्त ( स्थूल तथा सूक्ष्म देहों ) से; परः—भिन्न; आकाशः—आकाश; इव—सदृश; च—तथा; आधारः—आधार; ध्रुवः—निश्चित; अनन्त—अन्तहीन; उपमः—अथवा उपमा; ततः—इस प्रकार ।

शरीर के भीतर का आत्मा स्वयं-प्रकाशित है और दृश्य स्थूल तथा अदृश्य सूक्ष्म शरीरों से पृथक् है। यह परिवर्तनशील शरीरों का स्थिर आधार बना रहता है, जिस तरह आकाश भौतिक रूपान्तर की अपरिवर्तनशील पृष्ठभूमि है। इसलिए आत्मा अनन्त और भौतिक तुलना के परे है।

एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवामृश प्रभो ।

बुद्ध्यनुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिन्तया ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; आत्मानम्—तुम्हारा शुद्ध आत्मा; आत्म-स्थम्—शारीरिक आवरण के भीतर स्थित; आत्मना—तुम्हारे मन से; एव—निस्सन्देह; आमृश—ठीक से विचार करो; प्रभो—हे आत्मा के ईश्वर ( राजा परीक्षित ); बुद्ध्य—बुद्धि से; अनुमान-गर्भिण्या—तर्क द्वारा सोचा गया; वासुदेव-अनुचिन्तया—वासुदेव के ध्यान से।

हे राजा, भगवान् वासुदेव का निरन्तर ध्यान करते हुए तथा शुद्ध एवं तार्किक बुद्धि का प्रयोग करते हुए अपनी आत्मा पर सावधानी से विचार करो कि यह भौतिक शरीर के भीतर किस तरह स्थित है।

चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः ।

मृत्यवो नोपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

चोदितः—भेजा हुआ; विप्र-वाक्येन—ब्राह्मण के शब्दों से; न—नहीं; त्वाम्—तुम; धक्ष्यति—जला दोगे; तक्षकः—तक्षक सर्प; मृत्यवः—साक्षात् मृत्यु के दूत; न उपधक्ष्यन्ति—नहीं जला सकता; मृत्यूनाम्—मृत्यु के इन कारणों का; मृत्युम्—मृत्यु को; ईश्वरम्—आत्मा के स्वामी को।

ब्राह्मण के शाप से भेजा हुआ तक्षक सर्प तुम्हारी असली आत्मा को जला नहीं सकेगा। मृत्यु के दूत तुम जैसे आत्मा के स्वामी को कभी नहीं जला पायेंगे क्योंकि तुमने भगवद्भ्राम जाने के मार्ग के सारे खतरों को पहले से ही जीत रखा है।

तात्पर्य : असली मृत्यु तो मनुष्य की नित्य कृष्ण-चेतना का आवरण है। आत्मा के लिए, भौतिक मोह मृत्यु के समान है किन्तु परीक्षित महाराज ने उन सारे खतरों को यथा काम, ईर्ष्या तथा भय को पहले ही नष्ट कर दिया था, जो आध्यात्मिक जीवन को डराते-धमकाते हैं। यहाँ पर शुकदेव गोस्वामी सन्त स्वभाव वाले राजा को, जोकि मृत्यु की पहुँच से दूर था और शुद्ध कृष्ण-भक्त के रूप में भगवद्भ्राम जाने के लिए तत्पर था, बधाई देते हैं।

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।

एवं समीक्ष्य चात्मानमात्मन्याथाय निष्कले ॥ ११ ॥

दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ।

न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; ब्रह्म—परब्रह्म; परम्—परम; धाम—धाम; ब्रह्मा—परब्रह्म; अहम्—मैं; परमम्—परम; पदम्—गन्तव्य; एवम्—इस प्रकार; समीक्ष्य—विचार करके; च—तथा; आत्मानम्—अपने को; आत्मनि—परमात्मा में; आथाय—रख कर; निष्कले—भौतिक गन्तव्य से मुक्त; दशन्तम्—काटते हुए; तक्षकम्—तक्षक को; पादे—अपने पाँव में; लेलिहानम्—होठ चाटता सर्प; विष-आननैः—विष से भरे मुँह से; न द्रक्ष्यसि—नहीं देखोगे; शरीरम्—अपने शरीर को; च—तथा; विश्वम्—समूचे संसार को; च—तथा; पृथक्—भिन्न; आत्मनः—अपने से।

तुम मन में यह विचार लाओ कि, “मैं परब्रह्म, परम धाम से अभिन्न हूँ और परम गन्तव्य

परब्रह्म मुझसे अभिन्न हैं।” इस तरह अपने को परमात्मा को सौंपते हुए जो सभी भौतिक उपाधियों से मुक्त हैं, तुम तक्षक सर्प को जब वह अपने विष से पूर्ण दाँतों से तुम्हारे पास पहुँच कर तुम्हारे पैर में काटेगा, तो देखोगे तक नहीं। न ही तुम अपने मरते हुए शरीर को या अपने चारों ओर के जगत को देखोगे क्योंकि तुम अपने को उनसे पृथक् अनुभव कर चुके होगे।

एतत्ते कथितं तात यदात्मा पृष्टवानृप ।

हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; ते—तुमसे; कथितम्—कहा गया; तात—हे परीक्षित; यत्—जो; आत्मा—तुमने; पृष्टवान्—पूछा; नृप—हे राजा; हरेः—भगवान् का; विश्व-आत्मनः—ब्रह्माण्ड की आत्मा की; चेष्टाम्—लीलाएँ; किम्—क्या; भूयः—और आगे; श्रोतुम्—सुनना; इच्छसि—चाहते हो।

हे प्रिय राजा परीक्षित, मैंने तुमसे ब्रह्माण्ड के परमात्मा भगवान् हरि की लीलाएँ—वे सारी कथाएँ—कह दीं जिन्हें प्रारम्भ में तुमने पूछा था। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

तात्पर्य : इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील जीव गोस्वामी ने *भागवत* से अनेक श्लोकों को उद्धृत करते हुए राजा परीक्षित के उच्च भक्तिमय पद को दिखलाया है, जो अपना मन कृष्ण में स्थिर करने और भगवद्धाम वापस जाने पर तुले हुए थे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध के अन्तर्गत “महाराज परीक्षित को शुकदेव गोस्वामी का अन्तिम उपदेश” नामक पाँचवे अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।